ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. No.- 130-133

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

डॉ0 श्यामसुन्दर दुबे की लोक दृष्टि

1. लेखनी सुमन
2. डॉ0 कुंजीलाल पटेल

1.शोध अध्येत्री, 2. शोध निर्देशक– हिन्दी अध्ययन शाला एवं शोध केन्द्र–महाराजा छत्रसाल बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, छतरपुर (म0प्र0) भारत

Received-25.10.2022, Revised-30.10.2022, Accepted-04.11.2022 E-mail: lekhanisuman25@gmail.com

सारांशः ***डॉ. श्यामसुन्दर दुबे ने लोक साहित्य की अन्तः क्रियाओं का समावेश अपने रचना–कर्म में किया है। दुबे जी ने लोक साहित्य के विविध आयामों को साहित्य में समेटा एवं लोक को विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया है। लोक संस्कृति में राष्ट्र के प्रति प्रेम, प्रकृति और मनुष्यों का संबंध, नारी चेतना, लोक के समाज शास्त्रीय मंतव्य एवं लोक की मनः सौन्दर्यात्मक छवियों को दुबे जी ने स्पष्ट किया है। उन्होंने लोक संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग लोकगीत, लोक–कथाओं, लोक–मान्यताओं, लोक–कलाओं, लोक का वैचारिक पक्ष एवं गांव का सांस्कृतिक परिवेश उनकी नैतिक चेतना का महत्वपूर्ण आधार रहा है। दुबे जी के लोक साहित्य में लोक दृष्टि के विविध रूप विद्यमान हैं।***

कुंजीभूत शब्द– लोक दृष्टि, लोक संस्कृति, लोक–साहित्य, लोक परम्परा, समावेश, रचना–कर्म, नारी चेतना, लोकगीत।

डॉ. श्यामसुन्दर दुबे ऐसे साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपने सम्पूर्ण साहित्य में लोक जीवन को अंकित किया है। दुबे जी ने हिन्दी साहित्य की अनेक विधाओं में सफल लेखन कार्य किया है। श्यामसुन्दर दुबे ने विविध आयामी उपन्यास, निबंध, कहानी, कविता, नवगीत, संगीत रूपक, लोक साहित्य तथा समीक्षात्मक रचनाएँ की। उन्होंने अपनी रचनाओं में राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डाला है। दुबे जी की समस्त रचनाएँ लोक साहित्यों की विमर्शपरक रचनाएँ हैं। डॉ. श्यामसुन्दर दुबे लिखते हैं– "लोक ने अपनी चित्र संरचनाओं मे विश्वास और अपने अभिप्रायों को भी केन्द्रित किया है।

डॉ. श्यामसुन्दर दुबे की लोक दृष्टि :–

1. लोक प्रकृति की अभिव्यक्ति
2. लोक चेतना एवं लोकदृष्टि
3. कविता में लोक जीवन
4. ललित निबंधों में लोकदृष्टि
5. कला–दृष्टि और लोक कथाएँ
6. लोक–दृष्टि और नारी चेतना

1. लोक प्रकृति की अभिव्यक्ति – लोक की अवधारणा बहुत व्यापक है। लोक में पूरा विश्व समाया हुआ है। धरती पर समूचा जीवन लोक की अभिव्यक्ति है। इस विविध आयामी लोक ने रचनाकार की दृष्टि को सदैव प्रभावित किया है। दुबे जी ने लोक–जीवन में प्रकृति के अनेक रंगों को अंतर्निहित किया है। ऋतुओं की अनुभूतियों को अपने अन्दर समाहित किया है। वे ऋतुओं को जीवन आधार स्तंभ मानते हैं।

"लोक जीवन में ऋतुएँ जीवन चक्र का ही एक हिस्सा हैं। लोक का खुलापन पाकर और ऋतुओं से साझेदारी करके जीवन का विस्तार और निस्तार संभव होता है। ऋतुएँ ही लोक–चक्र घुमाती हैं और लोक ऋतु–चक्र में अपने को सुरक्षित अनुभव करता हुआ ऋतुओं में अपने होने की तलाश करने लगता हूँ।"[1]

'लोक' शब्द की व्याख्या करते हुए दुबे जी लिखते हैं– "लोक सक्रिय सत्ता है। सदैव क्रियाशील जीवन पद्धति को लोक ने प्रकृति के साहचर्य से ही सीखा है। प्रकृति कभी फुर्सत से नहीं बैठती। वह प्रतिक्षण अपने होने को अपनी क्रिया से चरितार्थ करती है। लोक का सम्पूर्ण जीवन–चक्र प्रकृति के इसी लीला–व्यापार से ऊर्जा प्राप्त कर गतिशील होता है, इसलिए लोक जीवन में गतिज ताजगी की ऊष्मा प्रत्येक स्तर पर विद्यमान रहती है।"[2]

दुबे जी प्राकृतिक सौन्दर्य एवं प्रकृति के मानवीयकरण से अत्यंत प्रभावित है। उनकी लोक अभिव्यिक्ति में प्रकृति का सुन्दर चित्रण दिखाई देता है। दुबे जी अपने एक नवगीत में प्रकृति के सौन्दर्य का चित्रण करते हैं।

"तुम्हें अभी भी है
इंतजार ऋतुओं का
तुम अभी भी अपनी
अंगुलियों के पोरों पर
तिथियों को विचारती हो।
सींचती तो निर्जला रहकर

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

अपने नेह–छेह के अमृत जल से
तुम्हारे सातियों से फूटती है
शगुन भरी उजास
जैसे अंकुर जगमगाता
धरती के अंतस्तल।"[3]

डॉ. दुबे ने लोक मूल्यों की प्रतिष्ठा में मनुष्य और प्रकृति के सामंजस्य की भूमिका महत्वपूर्ण मानी है। इनके साहित्य में मानव और प्रकृति के साहचर्य का अत्यंत सुन्दर वर्णन है। डॉ. कमोद सिंघई ने डॉ. श्यामसुन्दर दुबे के साहित्य में मानवतावादी दृष्टिकोण के विषय में लिखा है– "मानवतावादी धारणा के अंतर्गत मनुष्य ही सर्वोपरि है। डॉ. दुबे के साहित्य में यह दृष्टिणकोण मिलता है। उनकी दृष्टि में इस सृष्टि का सर्वोच्च प्राणी मनुष्य है। जॉत–पॉत, ऊँच–नीच के भेदभाव को एक मनुष्य के विकास में बॉधक मानते हैं क्योंकि मानव मात्र का विकास भारत के विकास से जुड़ा है।"[4]

2. लोक चेतना एवं लोक दृष्टि– डॉ. श्यामसुन्दर दुबे के लोक साहित्य में लोकचेतना सर्वोपरि है वह लिखते हैं– "लोक एक व्यापक और एक ऐसी दृष्टि है जो सम्पूर्ण विश्व क्या सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड को अपने में समाहित किए हुए है। यह दृष्टि लोक को इतना व्यापक, इतना सरल, इतना सहज, इतना सहिष्णु और इतना यथार्थबोधी बनाती है और इतना शुद्धधर्मी बनाती है कि लोक में जो कुछ भी सम्पन्न हो रहा है अर्थात् इस ब्रम्हाण्ड में जो कुछ भी सम्पन्न हो रहा है, वह लोक से लोक के परिगत से लोक की सीमाओं से ही है।"[5]

लोक साहित्य में दुबे जी की व्यापक लोक चेतना ने सम्पूर्ण लोक साहित्य को नया दृष्टिकोण दिया है। ब्रम्हाण्ड एवं मनुष्य के विकास को दिशा निर्देशित कर लोक दृष्टि की नई परिभाषा दी है। दुबे जी के लोक साहित्य में लोक चिंतन व्यापक रूप में विद्यमान है। वे लोक जीवन का दुःख–सुख, लोक विश्वास, रूढ़ियाँ, समस्याएँ तथा सांस्कृतिक परिदृश्यों का वर्णन कविता, गीत, नवगीत, कहानी, निबंध, उपन्यास आदि सभी विधाओं में करते हैं।

डॉ. दुबे के नवगीतों में लोक चेतना का स्वरूप दृष्टव्य है –

"पंच पुरोहित। सग्गा मित्ती।
चौपड़ बिछा फूल–सेजों पर
खेलें तान मसहरी !!
काठ करेजे। कौन सहेजे
अंकवारों की भेंट भलाई
पिंजड़ा पीहर। बसवट नईहर
कुलवंती मैना हरजाई।"[6]

3. कविता में लोक जीवन– डॉ. श्यामसुन्दर दुबे का लेखन क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। उनका लेखन गाँव से शहर तक के क्षेत्र को अपने में समेटे हुए है यही कारण है, कि उनके गाँव में टूटी बैलगाड़ी ट्रैक्टर पर लादकर शहर ले जाई जाती है–

"बैलगाड़ी जब टूटी
तो ट्रैक्टर ने लादा उसे
अपनी पीठ पर
और ले आया शहर में
कलावंतों ने
उसके चक्कों को ठोक दिया
प्रदर्शिनी के स्वागत द्वार पर।"[7]

डॉ. श्यामसुन्दर दुबे की कविताएं उनके अपने लोक का वर्णन है। उस लोक का जिसके सानिध्य में उनका जीवन बीता है। दुबे जी लोक जीवन को कविता के विकास का मूल मानते हैं। वे कहते है– "कविता की तात्कालिक समाज सापेक्ष फलानिति से असहमत होने वालों की संख्या है। लोक जीवन में कविता की प्रभान्विति को तात्कालिकता के संदर्भ में अनुभव करने वाले प्रसंग अक्सर घटित होते रहते हैं। लोक सहज सीधी जीवनचर्या में आज की कविता अनेक तरह से हस्तक्षेप कर रही है। कविता की पंक्तियों की गिरत में आकर लोगों के जीवन की दिशा बदलने में देर नहीं लगती है।"[8]

डॉ. दुबे जी ग्रामीण लोक जीवन के सभी पहलुओं को कविता का माध्यम बनाते हैं। अपनी कविताओं के माध्यम से उन्होंने लोक संघर्षों, हास–विलासों, आचार–विचारों, नैतिक मूल्यों, लोक परम्पराओं एवं सांस्कृतिक परिवेश का चित्रण किया है।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

"खेत की मिट्टी को
जैसे ही मैंने छुआ
अपनी हथेली में उठाया
पूरे इलाके की भाषा
बदल गई कविता में
पता नहीं कैसे बच्चों की हँसी
और घरवाली की आँखों का उजलापन
मुझे खेत की मिट्टी में
जगह–जगह मिल जाता है।"[9]

दुबे जी की कविताएँ लोक जीवन से रची बसी कविताएँ है।

डॉ. विजयबहादुर सिंह ने दुबे जी की कविताओं के विषय में लिखा है– "लोक की व्यथा–कथा कहती ये कविताएँ उस आदिम मानवीय जिजीविषा की पहचान करती है, कविता जिनके नाते संस्कृति का अहम् मूल्य कोष कही जाती रही है।"

4. ललित निबंधों में लोक दृष्टि– डॉ. श्यामसुन्दर दुबे लोक जीवन की अनुभूतियों से समग्र रूप परिचित रचनाकार है। उन्हें साहित्य सृजन की ऊर्जा और संवेदना लोक जीवन से ही प्राप्त होती है। उनके साहित्य में आम जनता के नैतिक अधिकारों के लिए संघर्ष की चेतना विद्यमान है। वे मानते हैं "लोक की संरचना जिस समाज से हुई है वह समाज प्रकृति के सान्निध्य का समाज है। लोक में प्रकृति और व्यक्ति का सामंजस्य पेड़–पौधे, नदी–निर्झर, पशु–पक्षी आदि के साथ लोक जीवन की समरसता है।"[10]

दुबे जी लोक जीवन को अपनी रचना–धार्मिक का आधार बनाकर लोक का अद्भुत चित्रण करते हुए लिखते हैं– "लोक संस्कृति ने पैदल यात्रा की है, नदी–निर्झरों, पहाड़ों–जंगलों, गांवों–खेतों में पाँव चलती रही है। वह अपने काँवड़ में हलदी आखत, दूध–दूब, गंगाजली लिए तीर्थों–तीर्थों अटन करती है।"[11]

डॉ. दुबे ने ललित निबंधों में लोक जीवन से जुड़े विभिन्न पक्षों पर अपनी दृष्टि डाली है। उनके लोक साहित्य में लोक–संस्कृति और लोकजीवन की विविध वर्णी छवियों का चित्रण है। "संवेदना का जन्म और संवेदना का कला माध्यम में रूपांतरित होना रचनाकार के चित्त का अंतर्ध्वस ही है। यह अंतर्ध्वस जिस चित्त में जितना अधिक संभव होता है वह चित्त उतना ही सृजनक्षम होता जाता है। इसलिए यह कोई अचरज नहीं है कि कविता में ऋतुओं की उपस्थिति कवि चित्त के अंतर्ध्वस का ही परिणाम है।"[12]

5. कला–दृष्टि और लोक कथाएँ– डॉ. श्यामसुन्दर दुबे ने प्रचलित लोककथाओं का संचयन अपने लेखन में किया है। उन्होंने लोक कथाओं में कौतूहल, जिज्ञासा और नैतिक मूल्यों को संग्रहीत किया है। बुन्देलखण्ड की लोककथाओं में जानपाड़े, चिड़िया की सेना, सेठ की चतुराई, लालच का फल, सबसे भलो रूपया आदि संग्रहीत हैं।

डॉ. दुबे जी लिखते हैं– "बुन्देली लोक कथाओं में मध्यकालीन सामंती संस्कारों का प्रभाव है। राजारानी की उपस्थिति से प्रारंभ होती है, किन्तु यहाँ एक तथ्य धातव्य है कि लोक कथाओं में राजारानी भी सामान्य जन–चेतना के संवाहक बनकर आते है लोक कथाओं के माध्यम से लोक की निरावृत पहचान हमें प्राप्त होती है।"[13]

डॉ. श्यामसुन्दर दुबे ने लोक मूल्यों की प्रतिष्ठा में मनुष्यों और लोक कलाओं का संबंध लोक जीवन से जोड़ते हैं। लोक चित्रकला, लोक गायन, लोक गीत, लोक मूल्य, लोक की समरसता का प्रतिपादन लोक साहित्य में किया है। डॉ. दुबे जी ने कलाओं के विवेचन का महत्वपूर्ण कार्य किया है। इन्होंने लोक में कलाओं की अनिवार्यता सिद्ध करते हुए लिखा है– "लोक में कलाओं का संसार लोक की अनिवार्य जीवंत प्रणाली का ही हिस्सा है। लोक कलाओं का उद्देश्य मात्र अनुरंजक परक नहीं वह मनुष्या की जैवकीय अनिर्वायता का ही एक नैसर्गिक विधान है। इस विधान को मनुष्य की इच्छाओं के अंत:करण के रूप में भी अनुभव किया जा सकता है ..... कलाओं की अभिव्यक्ति मनुष्य मात्र की सौन्दर्यनुभूति पर आधारित होते हुए भी मनुष्य के अंतः प्रसार की विश्व व्यापिनी सामर्थ्य से परिपूर्ण है।"[14]

6. लोक दृष्टि और नारी चेतना– डॉ. दुबे के साहित्य में स्त्री आस्था, स्त्री संघर्ष उनके व्रत, तीर्थ आदि का वर्णन मिलता है। डॉ. दुबे ने लोक में नारी की सामाजिक, सांस्कृतिक दशाओं का मार्मिक चित्रण किया है।

"स्त्री–विमर्श में काशीबाई का पुरुषार्थ इसलिए उल्लेखनीय है कि उन्होंने रूढ़ियों और वर्जनाओं के केन्द्र में फसी नारी छवि को तोड़ा। वे मर्दवादी माहौल में महामर्द बन प्रतिष्ठित हुई।"[15] लोक में स्त्री ममता, कोमल, भाव, करुणा और उनके शीलभाव का चिन्तन दुबे जी ने विस्तारपूर्वक किया है। "डॉ. दुबे ने स्त्रियों के जीवन मे प्रत्येक रंग को अपनी लेखनी कूची

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

से चित्रित किया है।"[16]

डॉ. दुबे स्त्री के समस्त महत्वपूर्ण पहलुओं पर अपनी दृष्टि डालते हैं तथा उसका मार्मिक चित्रण करते हैं। "लोक संसार में सभी देवताओं को अपने आबद्ध कर लिया है। लक्ष्मी, सीता आदि की सास और ननदें वैसी ही व्यवहार करती है। जैसा गांव–घर की सास–ननदें व्यवहार करती हैं। पुत्र प्रसव की वेदना से सीता वैसी ही पीड़ित है, जैसे एक सामान्य नारी। निर्वासित सीता लव–कुश को जन्म देते समय कहती है– "मोये आवे घनेरी पीर इते मोरो कोऊ नैया।" यह लोकगीतकार की मानवीय मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता थी।"[17]

सामान्य स्त्री की पीड़ा और सीता की पीड़ा समान है, क्योंकि वह एक स्त्री है। समाज में स्त्री अनेक रूपों में संघर्ष करती है, फिर वह देवी हो या एक सामान्य स्त्री। दुबे जी ने नारी को अपने साहित्य में विशेष स्थान दिया है। उन्होंने जीवन के सभी नैतिक मूल्यों को सहेजने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

निष्कर्ष– निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि डॉ. श्यामसुन्दर दुबे ने लोक संस्कृति, लोक परम्पराओं, प्रकृति की सौन्दर्य चेतना, लोक विश्वास, नारी चेतना आदि का चित्रण अपनी लोक दृष्टि में शामिल किया है। दुबे जी की लोक दृष्टि लोक को अपना अस्तित्व बनाए रखने की शक्ति प्रदान करती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. निबंध–ऋतु–पावस नियरानी, श्यामसुन्दर दुबे।
2. लोक का साहित्य साहित्य का लोक, श्यामसुन्दयर दुबे, पृष्ठ 85.
3. सुख–दुख की कमीज, नवगीत संकलन, श्यामसुन्दर दुबे।
4. श्यामसुन्दर दुबे की सर्जना का लोकपक्ष, डॉ. प्रियंका राय, पृष्ठ 196.
5. लोक का साहित्य साहित्य का लोक, श्यामसुन्दर दुबे, पृष्ठ 93.
6. श्यामसुन्दर दुबे की सर्जना का लोकपक्ष, डॉ. प्रियंका राय, पृष्ठ 181.
7. धरती के अनंत चक्करों में कविता संग्रह, श्यामसुन्दर दुबे।
8. लोक आख्यान परम्परा और परिदृश्य, श्यामसुन्दर दुबे, पृष्ठ 89.
9. कालमृगया, डॉ. श्यामसुन्दर दुबे।
10. श्यामसुन्दर दुबे के निबंधों में लोकतत्व, डॉ. मंजरी चतुर्वेदी, पृष्ठ 147.
11. ललित निबंध–धूल पर अंकित चरण चिन्हों, श्यामसुन्दर दुबे।
12. निबंध–ऋतु–पावस नियरानी, श्यामसुन्दर दुबे।
13. बुन्देलखण्ड की लोक कथाएँ, श्यामसुन्दर दुबे।
14. श्यामसुन्दर दुबे की सर्जना का लोकपक्ष, डॉ. प्रियंका राय, पृष्ठ 192.
15. लोक आख्यान परम्परा और परिदृश्य, डॉ. श्यामसुन्दर दुबे, पृष्ठ 19.
16. श्यामसुन्दर दुबे के ललित निबंधों का रचना–संसार, डॉ. मंजरी चतुर्वेदी, पृ. 163.
17. लोक मिथक मूल्य और सौन्दर्य दृष्टि, श्यामसुन्दर दुबे, पृ. 87.

*****